जंगली बूटी

● अमृता प्रीतम

अन्ताक्षरी

कहानी माला – 23

जंगली बूटी

•अमृता प्रीतम

अंगूरी, मेरे पड़ोसियों के पड़ोसियों के पड़ोसियों के घर, उनके बड़े ही पुराने नौकर की बिल्कुल नई बीवी है। एक तो इस बात से कि वह अपने पति की दूसरी बीवी है, सो इसका पति 'दूहाजू' हुआ। जू का मतलब अगर 'जून' हो तो इसका पूरा मतलब निकला 'दूसरी जून में पड़ चुका आदमी', यानी दूसरे विवाह की जून में और अंगूरी क्योंकि अभी विवाह की पहली जून में ही है, यानी पहली विवाह की जून में, इसलिए नई हुई। और दूसरे वह इस बात से भी नई है कि उसका गौना आए अभी जितने महीने हुए हैं, वे सारे महीने मिलकर भी एक साल नहीं बनेंगे।

पाँच-छह साल हुए, प्रभाती जब अपने मालिकों से छुट्टी लेकर अपनी पहली पत्नी की 'किरिया' करने के लिए अपने गाँव गया था, तो कहते हैं कि किरियावाले दिन इस अंगूरी के बाप ने उसका अँगोछा निचोड़ दिया था।

इस रस्म की एवज में प्रभाती का अंगूरी के साथ दूसरा विवाह हो गया था। पर एक तो अंगूरी अभी आयु की बहुत छोटी थी, और दूसरे अंगूरी की माँ गठिया के रोग से जुड़ी हुई थी इसलिए गौने की बात पाँच सालों पर जा पड़ी थी।....फिर एक-एक कर पाँच साल भी निकल गए थे। और इस साल जब प्रभाती अपने मालिकों से छुट्टी लेकर अपने गाँव गौना लेने गया था तो अपने मालिकों को पहले ही कह गया था कि या तो वह अपनी बहू को भी साथ लाएगा और शहर में अपने साथ रखेगा, या फिर वह भी गाँव से नहीं लौटेगा। मालिक पहले तो दलील करने लगे थे कि एक प्रभाती की जगह अपनी रसोई में से वे दो जनों की रोटी नहीं देना चाहते थे। पर जब प्रभाती ने यह बात कही कि वह कोठरी के पीछे वाली कच्ची जगह को

पोतकर, अपना अलग चूल्हा बनाएगी, अपना पकाएगी, अपना खाएगी, तो उसके मालिक यह बात मान गए थे। सो अँगूरी शहर आ गई थी। मुहल्ले में जब भी बाहर निकलती, एक रौनक उसके पाँवों के साथ-साथ चलती थी।

"यह क्या पहना है, अँगूरी?"

"यह तो मेरे पैरों की छैल चूड़ी है।

"और यह उँगलियों में?"

"यह तो बिछुआ है।"

"और यह बाँहों में?"

"यह तो पछेला है।"

"और माथे पर?"

"आलीबन्द कहते हैं इसे।"

"आज तुमने कमर में कुछ नहीं पहना?"

"तगड़ी बहुत भारी लगती है, कल को पहनूँगी। आज तो मैंने तौक भी नहीं पहना। उसका टाँका टूट गया। कल सहर में जाऊंगी टाँका भी गढ़ाऊंगी और नाक की कील भी लाऊंगी। मेरी नाक का नकसा भी था, इत्ता बड़ा, मेरी सास ने दिया नहीं।"

इस तरह अंगूरी अपने चाँदी के गहने एक नखरे से पहनती थी, एक नखरे से दिखाती थी।

पीछे जब मौसम फिरा था, अंगूरी का अपनी छोटी कोठरी में दम घूटने लगा था। वह बहुत बार मेरे घर के सामने आ बैठती थी। मेरे घर के आगे नीम के बड़े-बड़े पेड़ हैं, और इन पेड़ों के पास ज़रा ऊँची जगह पर एक पुराना कुआँ है। चाहे महल्ले का कोई भी आदमी इस कुएँ से पानी नहीं भरता, पर इसके पार एक सरकारी सड़क बन रही है और उस सड़क के मज़दूर कई बार इस कुएँ को चला लेते हैं जिससे कुएँ के गिर्द अकसर पानी गिरा होता है और यह जगह बड़ी ठण्डी रहती है।

"क्या पढ़ती हो, बीबीजी?" एक दिन अंगूरी जब आई मैं नीम के पेड़ों के नीचे बैठकर एक किताब पढ़ रही थी।

"तुम पढ़ोगी?"

"मेरे को पढ़ना नहीं आता।"

"सीख लो।"

"ना।"

"क्यों?"

"औरतों को पाप लगता है पढ़ने से।"

"औरतों को पाप लगता है, मर्द को नहीं लगता?"

"ना, मर्द को नहीं लगता?"

"यह तुम्हें किसने कहा है?"

"मैं जानती हूँ।"

"फिर मैं तो पढ़ती हूँ। मुझे पाप लगेगा।"

"सहर की औरत को पाप नहीं लगता, गाँव की औरत को पाप लगता है।"

मैं भी हँस पड़ी और अंगूरी भी। अंगूरी ने जो कुछ सीखा-सुना हुआ था, उसमें उसे कोई शंका नहीं थी, इसलिए मैंने उससे कुछ न कहा। वह अगर हँसती-खेलती अपनी ज़िन्दग़ी के दायरे में सुखी रह सकती थी, तो उसके लिए यही ठीक था। वैसे मैं अंगूरी के मुंह की ओर ध्यान लगाकर देखती रही। गहरे साँवले रंग में उसके बदन का मांस गुँथा हुआ था। और मैंने इस अंगूरी का प्रभाती भी देखा हुआ था, ठिगने कद का, ढलके हुए मुँह का, कसोरे जैसा। और फिर अंगूरी के रूप की ओर देखकर मुझे उसके मर्द के बारे में एक अजीब तुलना सूझी कि प्रभाती असल में आटे की इस घनी गुँथी लोई को पकाकर खाने का हकदार नहीं—वह इस लोई को ढककर रखने वाला कठवत है।....इस तुलना से मुझे खुद ही हँसी आ गई। पर मैं

अंगूरी को इस तुलना का आभास नहीं देना चाहती थी। इसलिए उसके गाँव की छोटी-छोटी बातें करने लगी।

माँ-बाप की, बहन-भाइयों की और खेतों-खलिहानों की बातें करते हुए मैंने उससे पूछा, "अंगूरी, तुम्हारे गांव में शादी कैसे होती है?"

"लड़की छोटी-सी होती है, पाँच-सात साल की, जब वह किसी के पाँव पूज लेती है।"

"कैसे पूजती है पाँव?"

"लड़की का बाप जाता है, फूलों की एक थाली ले जाता है, साथ में रुपए, और लड़के के आगे रख देता है।"

"यह तो एक तरह से बाप ने पाँव पूज लिए। लड़की ने कैसे पूजे?"

"लड़की की तरफ से तो पूजे।"

"पर लड़की ने तो उसे देखा भी नहीं?"

"लड़कियाँ नही देखतीं।"

"लड़कियाँ अपने होने वाले मर्द को नहीं देखतीं?"

"ना।"

"कोई भी लड़की नहीं देखती ?"

"ना।"

पहले तो अंगूरी ने 'ना' कर दी पर फिर कुछ सोच-सोचकर कहने लगी, "जो लड़कियाँ प्रेम करती हैं, वे देखती हैं।"

"तुम्हारे गाँव में लड़कियाँ प्रेम करती हैं?"

"कोई-कोई।"

"जो प्रेम करती हैं, उनको पाप नहीं लगता?" मुझे असल में अंगूरी की वह बात स्मरण हो आई थी कि औरत को पढ़ने से पाप लगता है। इसलिए मैंने सोचा कि उस हिसाब से प्रेम करने से भी पाप लगता होगा।

"पाप लगता है, बड़ा पाप लगता है।" अंगूरी ने जल्दी से कहा।

"अगर पाप लगता है तो फिर वे क्यों प्रेम करती हैं?"

"जे तो....बात यह होती है कि कोई आदमी जब किसी छोकरी को कुछ खिला देता है तो वह उससे प्रेम करने लग जाती है।"

"कोई क्या खिला देता है उसको?"

"एक जंगली बूटी होती है। बस वही पान में डालकर या मिठाई में डालकर खिला देता है। छोकरी उसे प्रेम करने लग जाती है फिर उसे वही अच्छा लगता है, दुनिया का और कुछ भी अच्छा नहीं लगता।"

"सच?"

"मैं जानती हूँ मैंने अपनी आँखों से देखा है।"

"किसे देखा था?"

"मेरी एक सखी थी। इत्ती बड़ी थी मेरे से।"

"फिर?"

"फिर क्या? वह तो पागल हो गई उसके पीछे। सहर चली गई उसके साथ।"

"यह तुम्हें कैसे मालूम है कि तेरी सखी को उसने बूटी खिलाई थी?"

"बरफी में डालकर खिलाई थी। और नहीं तो क्या, वह ऐसे ही अपने माँ-बाप को छोड़कर चली जाती? वह उसको बहुत चीजें लाकर देता था। सहर से धोती लाता था, चूड़ियाँ भी लाता था शीशे की, और मोतियों की माला भी।"

"ये तो चीजें हुई न ! पर यह तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि उसने जंगली बूटी खिलाई थी !"

"नहीं खिलाई थी तो फिर वह उसको प्रेम क्यों करने लग गई?"

"प्रेम तो यों भी हो जाता है।"

"नहीं, ऐसे नहीं होता। जिससे माँ-बाप बुरा मान जाएँ, भला उससे प्रेम कैसे हो सकता है?"

"तूने वह जंगली बूटी देखी है?"

"मैंने नहीं देखी। वो तो बड़ी दूर से लाते है। फिर छिपाकर मिठाई में डाल देते हैं, या पान में डाल देते हैं। मेरी माँ ने तो पहले ही बता दिया था कि किसी के हाथ से मिठाई नहीं खाना।"

"तूने बहुत अच्छा किया कि किसी के हाथ से मिठाई नहीं खाई। पर तेरी उस सखी ने कैसे खा ली?"

"अपना किया पाएगी।"

"किया पाएगी।" कहने को तो अंगूरी ने कह दिया पर फिर शायद उसे सहेली पर स्नेह आ गया या तरस आ गया, दुखे हुए मन से कहने लगी, "बावरी हो गई थी बेचारी। बालों में कंघी भी नहीं लगाती थी। रात को उठ-उठकर गाने गाती थी।"

"क्या गाती थी?"

"पता नहीं, क्या गाती थी। जो कोई बूटी खा लेती है, बहुत गाती है। रोती भी बहुत है।"

बात गाने से रोने पर आ पहुँची थी। इसलिए मैनें अंगूरी से और कुछ न पूछा।

और अब बड़े थोड़े ही दिनों की बात है। एक दिन अंगूरी नीम के पेड़ के नीचे चुपचाप मेरे पास आ खड़ी हुई। पहले जब अंगूरी आया करती थी तो छन-छन करती, बीस गज़ दूर से ही उसके आने की आवाज़ सुनाई दे जाती थी, पर आज उसके पैरों की झाँजरें पता नहीं कहाँ खोई हुई थी। मैने किताब से सिर उठाया और पूछा, "क्या बात है, अंगूरी?"

अंगूरी पहले कितनी ही देर मेरी ओर देखती रही, फिर धीरे से कहने लगी, "बीबीजी, मुझे पढ़ना सिखा दो।"

"क्या हुआ अंगूरी?"

"मुझे नाम लिखना सिखा दो।"

"किसी को खत लिखोगी?"

अंगूरी ने उत्तर न दिया, एकटक मेरे मुँह की ओर देखती रही।

"पाप नहीं लगेगा पढ़ने से? " मैंने फिर पूछा।

अंगूरी ने फिर भी जवाब न दिया और एकटक सामने आसमान की ओर देखने लगी।

यह दोपहर की बात थी। मैं अंगूरी को नीम के पेड़ के नीचे बैठी छोड़कर अन्दर आ गई थी। शाम को फिर कहीं मैं बाहर निकली, तो देखा, अंगूरी अब भी नीम के पेड़ के नीचे बैठी हुई थी। बड़ी सिमटी हुई थी। शायद इसलिए कि शाम को ठण्डी हवा देह में थोड़ी-थोड़ी कँपकँपी छेड़ रही थी।

मैं अंगूरी की पीठ की ओर थी। अंगूरी के होंठों पर एक गीत था पर बिलकुल सिसकी जैसा –"मेरी मुन्दरी में लागो नगीनवा, हो बैरी कैसे काटूँ जोबनवा।"

अंगूरी ने मेरे पैरों की आहट सुन ली, मुँह फेर देखा और फिर अपने गीत को अपने होंठों में समेट लिया।

"तू तो बहुत अच्छा गाती है, अंगूरी"

सामने दिखाई दे रहा था कि अंगूरी ने अपने आँखों में काँपते आँसू रोक लिए और उनकी जगह अपने होंठों पर एक काँपती हँसी रख दी।

"मुझे गाना नहीं आता।"

"आता है ----"

"यह तो ---- "

"तेरी सखी गाती थी?"

"फिर मुझे भी तो सुनाओ।"

"ऐसे ही गिनती है बरस की। चार महीने ठण्ड़ी होती है, चार महीने गरमी और चार महीने बरखा--"

"ऐसी नहीं, गा के सुनाओ।"

अंगूरी ने गाया तो नहीं, पर बारह महानों को ऐसे गिना दिया जैसे यह सारा हिसाब वह अपनी उँगलियों पर कर रही हो :

"चार महीने, राजा ठण्डी होवत है;
थर-थर काँपे करेजवा।
चार महीने, राजा गरमी होवत है;
थर-थर काँपे पवनवा।
चार महीने, राजा, बरखा होवत है;
थर-थर काँपे बदरवा।"

"अंगूरी?"

अंगूरी एकटक मेरे मुँह की ओर देखने लगी। मन में आया कि इसके कन्धे पर हाथ रखके पूछूँ "पगली, कहीं जंगली बूटी तो नहीं खा ली?" मेरा हाथ उसके कन्धे पर रखा भी गया। पर मैंने यह बात पूछने के स्थान पर यह पूछा, "तूने खाना भी खाया है, या नहीं?"

"खाना?" अंगूरी ने मुँह ऊपर उठाकर देखा।....

यह मुझे मालूम था कि अंगूरी अपनी रोटी खुद ही बनाती थी। प्रभाती मालिकों की रोटी बनाता था और मालिकों के घर से ही खाता था, इसलिए अंगूरी को उसकी रोटी की चिन्ता नहीं थी। इसलिए मैंने फिर कहा, "तूने आज रोटी बनाई है या नहीं?"

"अभी नहीं।"

"सवरे बनाई थी? चाय पी थी?"

"चाय? आज तो दूध ही नहीं था।"

"आज दूध क्यों नहीं लिया था?"

"वह तो मैं लेती नहीं, वह तो....."

"तो रोज़ चाय नहीं पीती?"

"पीती हूँ।"

"फिर आज क्या हुआ?"

"दूध तो वह रामतारा...."

रामतारा हमारे मुहल्ले का चौकीदार है। सब का साझा चौकीदार। सारी रात पहरा देता है। वह सबेरसार खूब उनींदा होता है। मुझे याद आया कि जब अंगूरी नहीं आई थी, वह सवेरे ही हमारे घरों से चाय का गिलास माँगा करता था। कभी किसी के घर से और कभी किसी के घर से, और चाय पीकर वह कुएँ के पास खाट डालकर सो जाता था।–और अब, जब, से अंगूरी आई थी वह सवेरे ही किसी ग्वाले से दूध ले आता था; अंगूरी के चूल्हे पर चाय का पतीला चढ़ाता था, और अंगूरी, प्रभाती और रामतारा तीनों चूल्हे के गिर्द बैठकर चाय पीते थे।....और साथ ही मुझे याद आया कि रामतारा पिछले तीन दिनों से छुट्टी लेकर अपने गाँव गया हुआ था।

मुझे दुखी हुई हँसी आई और मैंने कहा,"और अंगूरी, तुमने तीन दिन से चाय नहीं पी?"

"ना," अंगूरी ने ज़ुबान से कुछ न कहकर केवल सिर हिला दिया।

"रोटी भी नहीं खाई?"

अंगूरी से बोला नहीं गया। लग रहा था कि अग अंगूरी ने रोटी खाई भी होगी तो न खाने जैसी ही।

रामतारे की सारी आकृति मेरे सामने आ गई। बड़े फुर्तीले हाथ-पाँव, इकहरा बदन, जिसके पास हल्के-हल्के हँसती हुई और शरमाती आँखें थीं और जिसकी ज़ुबान के पास बात करने का एक खास सलोका था।

"अंगूरी !"

"जी !"

"कहीं जंगली बूटी तो नहीं खा ली तूने?"

अंगूरी के मुँह पर आँसू बह निकले। इन आँसुओं ने बह-बहकर अंगूरी की लटों को भिगो दिया। और फिर इन आँसुओं ने बह-बहकर उसके होंठों को भिगो दिया। अंगूरी के मुँह से निकलते अक्षर भी गीले थे, ''मुझे कसम लागे जो मैंने उसके हाथ से कभी मिठाई खाई हो। मैंने पान भी कभी नहीं खाया। सिर्फ चाय....जाने उसने चाय में ही.....''

और आगे अंगूरी की सारी आवाज़ उसके आँसुओं में डूब गई।



आपके जवाब के इन्तजार में--
शिवसिंह नयाल,
'अलारिप्पु' बी-६/६२, पहली मंज़िल, सफदरजंग इन्कलेव,
नई दिल्ली-११००२९. दूरभाष : ६०६३२७

ज्योति लेजर टाइपसेटिंग